इकाई–3 : ज्ञान का समाजशास्त्र

संरचना

3.1 ज्ञान का समाजशास्त्र
- **3.1.1** शिक्षा का समाज

3.2 पाठ्यक्रम के माध्यम कुछ प्रकार के ज्ञ्ज्ञन की विशेषाधिकार
- **3.2.1** शैक्षिक समाज–शास्त्र की परिधि
- **3.2.2** समाज–शास्त्रीय प्रवृत्ति और शिक्षा
- **3.2.3** शिक्षा के उद्देश्य
- **3.2.4** शिक्षा–क्रम की रचना
- **3.2.5** पाठन –प्रणलियाँ
- **3.2.6** पाठ्यक्रम के माध्यम से सीखने के अवसरों पर इसके प्रभाव

3.3 समाज के संदर्भ में शिक्षा के सामाजिक आधार
- **3.3.1** समाजशास्त्र की परिभाषाएँ
- **3.3.2** शैक्षिक समाजशास्त्र
- **3.3.3** शैक्षिक समाजशास्त्र का शिक्षा पर प्रभाव
- **3.3.4** शैक्षिक समाजशास्त्र का क्षेत्र
- **3.3.5** शैक्षिक समाज शास्त्र का महत्व
- **3.3.6** शैक्षिक समाजशास्त्र के उद्देश्य
- **3.3.7** शिक्षाः दार्शनिलीय तथा समाजशास्त्रीय परिपेक्ष्य
- **3.3.8** शिक्षा का समाजशास्त्र तथा शैक्षिक समाजशास्त्र में अन्तर

3.4 संस्कृति की परिभाषाएँ
- **3.4.1** संस्कृति की प्रकृति की विशेषताएँ
- **3.4.2** संस्कृति सभ्यता में अन्तर
- **3.4.3** संस्कृति के प्रकार
- **3.4.4** शिक्षा तथा संस्कृति में संबंध
- **3.4.5** सांस्कृतिक परितर्वन में शिक्षा की भूमिका

3.5 आधुनिकता का अर्थ
- **3.5.1** आधुनिकता में बाधाएँ
- **3.5.2** आधुनिकता के संदर्भ में शिक्षा के सामाजिक आधार

3.6 समाज और ज्ञान के विभिन्न ढाँचें में अन्तः स्थापित शक्ति के बीच संबंध
- **3.6.1** समाज एवं शिक्षा के अंतर्सम्बन्ध का प्रकार

3.6.2 पाठ्यक्रम के माध्यम से सीखने के अवसरों पर इसके प्रभाव

1. **पाठ्यक्रम पर प्रभाव–पाठ्यक्रम का अर्थ है**–उद्देश्यों का ज्ञान प्राप्त करने की व्यवस्थित क्रियाओं का संकलन। इसके द्वारा उद्देश्यों की अनुभूति होती है, जो दर्शन से पूर्णतः प्रभावित होता है।

प्रकृतिवाद के प्रमुख प्रवर्तक रूसों ने पाठ्यक्रम में शैशवावस्था के अन्तर्गत बालक को सामान्य ज्ञान न देकर उसके शारीरिक विकास को महत्वपूर्ण समझा। उसकी ज्ञानेन्द्रियों के विकास को उत्तम समझा। उसने बाल्यकाल में पुस्तकीय ज्ञान को उचित नहीं माना। किशोरावस्था हेतु गणित, भाषा–संगीत, हस्तकला एवं सामाजिक शिक्षा को उचित समझा गया एवं युवावस्था में नैतिक और धार्मिक शिक्षा को शामिल किया गया, जिसका अध्ययन एक–दूसरे के सम्पर्क से होना चाहिये।

आदर्शवाद में हॉर्न महोदय ने ऐसे पाठ्यक्रम की सिफारिश की जो सर्वोच्च आदर्श की तरफ अग्रसर होने में सहायक हो। इसके अन्तर्गत विज्ञान, कला एवं व्यावसायिक शिक्षा को महत्व दिया गया और पुस्तकीय ज्ञान को अनुभव के द्वारा सीखना सर्वोत्तम समझा। बालक का सर्वोपरि उद्देश्य "सत्यम शिवम सुन्दरम" के उद्देश्यों को प्राप्त करना माना। उन्होंने पाठ्यक्रम में वे सभी विषय रखें जो बौद्धिक विकास में मददगार होते हैं।

व्यवहार में डीवी महोदय ने लचीले एवं अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम को सर्वश्रेष्ठ माना। पाठ्यक्रम में छात्र की रूचि, विकास, मानसिक स्तर के अनुरूप परिवर्तित होती रहनी चाहिये। उन्होंने व्यावहारिक ज्ञान को ज्यादा महत्व दिया। सृजनात्मक विकास को जरूरी समझा।

इस तरह हम देखते हैं कि विभिन्न दर्शनों के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्धारण भिन्न–भिन्न तरह से हुआ है, क्योंकि इस पर देश, काल, परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। मानवता के विकास हेतु दर्शन पाठ्यक्रम का निर्धारक है।

2. **पाठ्य–पुस्तकों पर प्रभाव–** शिक्षा प्रदान करने हेतु पुस्तकें बहुत जरूरी उपकरण हैं, जिससे उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकती है। अच्छी पुस्तकों का चयन भी दर्शन द्वारा प्रभावित होता है।

प्रकृतिवादी पुस्तकीय ज्ञान के पक्ष में न होकर उदाहरणों, तस्वीरों, चित्रों द्वारा प्रदत्त ज्ञान जरूरी समझते हैं, जो बालक को प्रत्यक्ष एवं रोचक ज्ञान प्रदान कर सकें।

प्रयोजनवादी पुस्तकों का स्वरूप ऐसा चाहते हैं जिससे व्यावहारिक प्रयोगों के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। विभिन्न प्रयोगों का उदाहरण दिया गया हो एवं पुस्तकों में सिर्फ उद्देश्यों तथा सिद्धांतों का वर्णन हो। कभी असमान पाठ्य–पुस्तकों से बालकों में मिलान करने में कठिनाईयाँ आती हैं।

आदर्शवादी ऐसी पुस्तकें स्वीकार करते हैं जिसमें लेखक के व्यक्तित्व की झलक आती हो तथा उसका प्रभाव बालक पर एक आदर्श के रूप में पड़े एवं पाठक और लेखक के व्यक्तित्व में प्रतिक्रिया हो।

इस तरह पाठ्य–पुस्तकें भी समय–समय पर दर्शन के अनुसार बदलती रहती हैं।

3. **शिक्षण की विधियों पर प्रभावः–**शिक्षण–विधियाँ वह माध्यम है जिसके द्वारा उद्देश्यों को प्राप्त करना और भी सरल एवं तीव्र हो जाता है। शिक्षा के द्वारा ही जीवन–दर्शन का निर्माण होता है।

प्रकृतिवादियों ने शिक्षण–विधियों को ज्यादा महत्व प्रदान नहीं किया। उनके अनुसार बालक को स्वयं ही अध्ययन करना चाहिये। वे बाल–केन्द्रित विधियों पर ज्यादा बल देते हैं।

आदर्शवादियों ने ऐसी विधि को सर्वोत्तम माना है जिसके द्वारा अध्यापक के व्यक्तित्व की सम्पूर्ण छाप छात्र पर पड़ सके। वे तर्कपूर्ण, वाद–विवाद विधि, रटने की विधि पर ज्यादा बल देते हैं।

प्रयोजनवादी सामाजिक विधि को प्रधानता देते हैं, जो बालक की अपनी रूचि तथा उसके चयन के अनुसार होनी चाहिये। इस तरह हम कह सकते हैं कि दर्शन द्वारा शिक्षण–विधियाँ पूर्णतः प्रभावित होती रही हैं।

4. **शिक्षक पर प्रभावः–**शिक्षक को भी विभिन्न दर्शनों में विभिन्न दृष्टिकोणों से लिया गया है। उनके द्वारा शिक्षक की कार्य–विधि तथा क्षमताओं का निर्धारण किया गया है।

प्रकृतिवाद में शिक्षकों को एक आदर्श के रूप में रखा गया है। उसको सिर्फ मार्गदर्शक ही रहना है। उसे अपनी कोई विधि नहीं अपनानी है, इसलिये अध्यापक निष्क्रिय माना गया है। संभव प्रयास करता है। अध्यापक को परिवार के मुखिया के समान माना है।

प्रयोजनवादियों के अनुसार शिक्षक छात्र के ऊपर बोझ नहीं होना चाहिये। वह कोई ज्ञान अपनी मर्जी से नहीं थोप सकता है। वह सिर्फ छात्र की उन्नति के अवसर प्रदान कर सकता है क्योंकि **"अध्यापक को छात्र का मित्र, पथ–प्रदर्शक एवं दार्शनिक होना चाहिये।"**

5. **छात्र पर प्रभावः–**छात्र शिक्षा की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है, जिस पर पूरा कार्यक्रम आधारित रहता है। प्रकृतिवाद में छात्र को सक्रिय माना गया है। वह अपनी योग्यताओं तथा क्षमताओं के आधार पर खुद शिक्षा प्राप्त करेगा। लेकिन आदर्शवाद में शिक्षार्थी से शिक्षक ज्यादा महत्वपूर्ण माना गया। प्रयोजनवाद में छात्र को ज्यादा महत्वपूर्ण समझा गया एवं शिक्षा–प्रक्रिया को बाल–केन्द्रित होना उचित बताया है।

6. **अनुशासन पर प्रभावः–**पाठ्य–पुस्तकों, पाठ्यक्रम, छात्र तथा अध्यापक के समान अनुशासन भी दर्शन के प्रभाव से मुक्त नहीं है। प्रकृतिवाद में छात्र को प्रत्यक्ष दण्ड देना उचित नहीं समझा है, क्योंकि प्रकृति उसे स्वयं की दण्ड देगी। अगर वह आग को स्पर्श करेगा तो जलना उसका दण्ड होगा।

आदर्शवाद में जीवन को अनुशासित बनाने का प्रयास होता है। आदर्शवादी छात्र को शारीरिक दण्ड देने के पक्ष में है, जिससे कक्षा में अनुशासन बना रहे। प्रयोजनवादी सामाजिक अनुशासन को ज्यादा महत्व देते है, जो छात्र को उचित निर्देशन से अनुशासित बनाते हैं।

7. **मूल्यांकन पर प्रभावः—**मूल्यांकन शिक्षा के विकास का आधार है, जिस पर बालक, शिक्षक तथा समाज की प्रगति निर्भर करती है। मूल्यांकन से अभिप्राय "दिये हुए विचारों में से कितना ग्रहण किया है।" का अनुमान लगाना है। यह शिक्षा प्रक्रिया की मुख्य कड़ी है। पहले हम शिक्षा के लक्ष्य निर्धारित करते है।" फिर कुछ शैक्षिक सुविधाएँ दी जाती हैं। बाद में मूल्यांकन किया जाता है। अतः स्पष्ट है कि पाठ्यक्रम के माध्यम से समान सीखने की विधि होनी चाहिये।

3.3 समाज के संदर्भ में शिक्षा के सामाजिक आधार

जहाँ एक तरफ शिक्षा के दार्शनिक मनोवैज्ञानिक आधारों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना है, वहाँ दूसरी तरफ युग की माँग के अनुसार शिक्षा के सामाजिक आधार पर भी विशेष बल दिया जाना चाहिये। शिक्षा के सामाजिक आधार का अर्थ यह है कि शिक्षा की व्यवस्था समाज की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं एवं आदर्शो को आधार बनाते हुए की जानी चाहिये। दूसरे शब्दों में शिक्षा के द्वारा बालकों में सामाजिक भावनाओं एवं सामाजिक गुणों को विकसित किया जाये, जिससे वे अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों का पालन—पोषण कर सकें एवं कुशल नागरिक के रूप में भार को स्वयं वहन करते हुए समाज की प्रगति में अधिक से अधिक योगदान दे सकें। इस तरह शिक्षा का सामाजिक आधार इस बात पर बल देता है कि शिक्षा के द्वारा बालकों को सुयोग्य, सचरित्र तथा कर्मठ नागरिक बनाया जाये, जिससे समाज उत्तरोत्तर उन्नति के शिखर पर चढ़ता रहें।

स्पष्ट है समाज व्यक्तियों का एक संगठन है। यह संगठन व्यक्तियों को अपना अस्तित्व बनाये रखने हेतु आवश्यक सुरक्षा प्रदान करता है। हालांकि समाज का निर्माण व्यक्तियों से मिलकर होता है, फिर भी समाजवादियों के अनुसार व्यक्ति की अपेक्षा समाज की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं एवं आदर्शो को अधिक महत्व दिया जाता है। विद्वानों का मत है कि समाज की श्रेष्ठता किसी व्यक्ति पर किसी भी उत्तरदायित्व को बलपूर्वक नहीं थोपती, फिर भी समाज, सामाजिक बंधनों का एक ऐसा जाल है, जो स्थिर न रहकर सदैव बदलता रहता है। दूसरे शब्दों में, समाज गतिशील है। ध्यान देने की बात है कि समाज की कुछ राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक विचारधाराएं होती हैं, जिनके अनुसार वह व्यक्ति की समस्त शक्तियों के विकास हेतु ऐसे अवसर प्रदान करता रहता है कि विकसित होने के बाद प्रत्येक व्यक्ति उसे सबल, सुदृढ़ तथा शक्तिशाली बनाने में अपना यथाशक्ति योगदान देता रहे। दूसरे शब्दों में, समाज व्यक्ति की समस्त आवश्यकताओं को पूरा करता है तथा उसे इस बात का ज्ञान कराता है कि वह उसका एक उत्तरदायित्व नागरिक है।

मेकाइवर तथा पेज के शब्दों में:—"मनुष्य समाज पर अपनी सुरक्षा, आराम, पालन—पोषण, शिक्षा एवं अन्य महत्वपूर्ण अवसरों एवं सेवाओं के लिये निर्भर है। यह

समाज पर अपने विचारों, स्वप्नों तथा आकांक्षाओं एवं अपने मन तथा शरीर की बहुत सी व्याधियों के लिये निर्भर है। उसका समाज में जन्म लेना ही समाज की आवश्यकताओं को अपने साथ लाता है।"

3.3.1 समाजशास्त्र की परिभाषाएं

1. **गिडिंग्स के शब्दों में–**"समाजशास्त्र समग्र रूप में समाज का क्रमबद्ध वर्णन और व्याख्या है।"

2. आगबर्न के शब्दों में– "समाजशास्त्र समाज संबंधी ज्ञान का समुच्चय है । इसमें समाज को उच्चतर बनाने के ढंगों का वर्णन होता है। यह सामाजिक नीतिशास्त्र, सामाजिक दर्शनशास्त्र है, परन्तु इसे सामान्यतया समाज का विज्ञान कहा जाता है।"

संक्षेप में समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है जो सामाजिक संरचना, सामाजिक संबंधों उनके स्वरूपों? प्रकारों, कार्यो, आदि का अध्ययन करता है।

3.3.2 शैक्षिक समाजशास्त्र

शिक्षा के प्रति रूचि उत्पन्न हो जाने से समाजशास्त्र की एक नई शाखा कुछ ही वर्षो में विकसित की गई है, जिसे शैक्षिक समाजशास्त्र की संज्ञा दी जाती है। दूसरों शब्दों में,भी कहा जा सकता है कि यह विज्ञान समाजशास्त्र का एक ऐसा अंग है जो शिक्षा एवं समाजशास्त्र का समन्वित रूप है। ध्यान देने की बात है कि शैक्षिक समाजशास्त्र इस बात पर बल देता है कि समाजशास्त्र के उद्‌देश्यों को शैक्षिक प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त किया जाये। अतः यह विज्ञान समाज की सम्पूर्ण संस्थाओं जैसे परिवार, स्कूल, समुदाय, धर्म, राज्य एवं समाचार–पत्र एवं रेडियो आदि का अध्ययन करके व्यक्ति को एक श्रेष्ठ तथा सामाजिक प्राणी बनाने के लिये शिक्षा के उद्‌देश्यों, पाठ्‌यक्रमों, शिक्षण–पद्धतियों एवं अन्य सभी अंगों को निर्धारित करता है। इस तरह शैक्षिक समाजशास्त्र सामाजिक विकास एवं उसकी उन्नति के लिये उन सभी सामाजिक प्रतिक्रियाओं और सामाजिक अन्तः प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है, जिनको जाने बिना शिक्षा के स्वरूप तथा शिक्षा की समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकता। संक्षेप में, शैक्षिक समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो शिक्षा संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली प्रक्रियाओं, जन–समूहों, संस्थाओं एवं समितियों का अध्ययन करता है। चूँकि अब शिक्षा से संबंध रखने वाली शाख व्यक्ति तथा समाज की उन्नति के लिये उत्तरदायित्व होती है, अतः शैक्षिक समाजशास्त्र को समाज के सभी नियमों, आदर्शो, साधनों, समस्याओं एवं परिस्थितियों एवं उनके व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन

करके समाज की उन्नति हेतु शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण–पद्धति, स्कूल, शिक्षक, अनुशासन और पुस्तकों आदि का स्वरूप निर्धारित करना पड़ता है।

जार्ज पेन को शैक्षिक समाजशास्त्र का पिता माना जाता है। उसने अपनी पुस्तक 'दी प्रिन्सिपल्स ऑफ एजुकेशनल सोसियोलॉजी' में इस बात पर प्रकाश डाला है कि शिक्षा का सामूहिक जीवन पर एवं सामूहिक जीवन का शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है। यही नहीं, उसने यह भी स्पष्ट किया है कि व्यक्ति को पूर्णरूपेण विकसित करने के लिए उस पर पड़ने वाली सामाजिक शक्तियों के प्रभाव का अध्ययन करना परम आवश्यक है। जॉन डीवी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "स्कूल तथा समाज एवं जनतंत्र और शिक्षा" में शैक्षिक समाजशास्त्र के महत्व को स्वीकार करते हुए शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया माना है। तथा बताया है कि शिक्षा की प्रक्रिया व्यक्ति द्वारा जाति की सामाजिक चेतना में भाग लेने से ही विकसित होती है। जब तक सामाजिक चेतना का अध्ययन नहीं किया जायेगा, उस समय तक शिक्षा का पूर्ण विकास होना असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है। इसलिये शिक्षा के नियोजन तथा विकास हेतु यह जरूरी है कि सामाजिक चेतना का विकास किया जाये और इसी के आधार पर शिक्षा का स्वरूप एवं उसके विभिन्न अंगों को निर्धारित करना चाहिये। यही है कि शैक्षिक समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य।

3.3.3 शैक्षिक समाजशास्त्र का शिक्षा पर प्रभाव

1. शैक्षिक समाजशास्त्र के प्रभाव से जनहित शिक्षा आन्दोलन शुरू हुआ। परिणामस्वरूप बालकों को शिक्षित करने के लिए चारों तरफ सार्वजनिक स्कूल खोले जाने लगे।

2. सार्वजनिक शिक्षा चर्च या धर्म के चंगुल से निकलकर राज्य द्वारा निर्देशित होने लगी।

3. प्रौढ़ शिक्षा आन्दोलन शुरू हुआ। इससे राज्यों ने प्रौढ़ व्यक्तियों की शिक्षा का उत्तरदायित्व स्वीकार किया। यही नहीं, विकलांग, जड़ एवं हीन बालकों को शिक्षित करने हेतु किया जाने लगा।

4. चूँकि सार्वजनिक शिक्षा के लिये शिक्षकों की माँग बढ़ने लगी, इसलिये शिष्याध्यापक प्रणाली का प्रयोग किया जाने लगा। इस प्रणाली के अनुसार छोटे बालकों को पढ़ने का उत्तरदायित्व बड़े बालकों के ऊपर छोड़ दिया जाता है।

5. बालकों को कारखाने में कार्य करने से रोकने हेतु शिशु–शिक्षा आन्दोलन शुरू हुआ। यह आन्दोलन फ्रांस से आरंभ हुआ एवं इंग्लैण्ड से होता हुआ अमेरिका जा पहुँचा। इस आन्दोलन का श्रेय श्री रॉबर्ट ओवन को है।

6. राज्यों द्वारा व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था भी की जाने लगी। आधुनिक युग में विश्व के सभी प्रगतिशील देशों में टेक्नीकल, कामर्शियल एवं एग्रीकल्चलर स्कूल शैक्षिक समाजशास्त्र के प्रभाव से ही खोले जा रहे हैं।

7. शैक्षिक समाजशास्त्र से शिक्षा का प्रत्येक अंग प्रभावित हुआ।

8. शैक्षिक समाजशास्त्र संस्कृति के संरक्षण एवं विकास में पूर्ण सहयोग प्रदान करता है। इससे व्यक्ति ऐसी संस्कृति की स्थापना करने के योग्य बन जाता है, जो आधुनिक युग में अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं को विकसित करने में सहयोग प्रदान कर सकें।

9. शैक्षिक समाजशास्त्र ऐसे नियमों को निर्धारित करता है जो कि नियम तथा विधान स्थित रहते हुए समाज की सहायता करते रहते हैं लेकिन ध्यान देने की बात है कि जिन परम्पराओं को स्वीकार किया जाये, उनमें समाज द्वारा कुछ सुधार अवश्य किया गया हो। इससे परम्परा अपनी सुधारी हुई स्थिति में आगे बढ़ सकेगी।

10. शैक्षिक समाजशास्त्र की सहायता से व्यक्ति इस तरह की सामाजिक संस्थाओं को निर्मित करता है, जिनमें किसी तरह का भेदभाव नहीं होता। वह जिस व्यवसाय में लग जाता है उसी के अनुकूल बन जाता है । इससे समाज विकसित होता रहता है।

3.3.4 शैक्षिक समाजशास्त्र का क्षेत्र

1. शिक्षक एवं बालकों में पारस्परिक संबंध।
2. शिक्षक का समाज में स्थान।
3. सामाजिक समस्याएं, आवश्यकतायें एवं प्रेरणायें।
4. समाज की छोटी इकाईयाँ एवं उनके आपसी संबंध।
5. स्कूल एवं स्थानीय सामाजिक संस्थाओं का परस्पर संबंध।
6. समाज के जीवन का व्यक्ति एवं स्कूल पर पड़ने वाला प्रभाव।
7. स्कूल में जनतांत्रिक भावना का विकास ।
8. व्यक्ति एवं समाज की प्रगति के लिए पाठ्यक्रम में जरूरी परिवर्तन।
9. आलोचनात्मक चिन्तन एवं अन्वेषण को प्रोत्साहन।
10. रेडियो, चलचित्र एवं प्रेस का समाज की प्रक्रिया में मूल्यांकन ।
11. व्यक्तित्व के विकास के लिए शिक्षण पद्धति को निर्धारित करना ।

12. सामाजिक नियंत्रण एवं सामाजिक प्रगति के सभी साधनों की छानबीन करना।

3.3.5 शैक्षिक समाजशास्त्र का महत्व

1. शैक्षिक समाजशास्त्र व्यक्ति को सामाजिक प्राणी के रूप में मानकर अग्रसर होता है। यह बात प्राचीन काल में नहीं थी। उस समय जातीय भेदभाव था। इससे प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार नहीं था कि वह समान रूप से शिक्षा प्राप्त कर सके। उदाहरण के लिये प्राचीन भारत में जातीय भेदभाव के कारण वेदों का अध्ययन करने का अधिकार सिर्फ बाह्मणों को ही था। ऐसे ही शास्त्र विद्या सिर्फ क्षत्रिय लोग ही कर सकते थे। आज स्थिति बिल्कुल बदल गयी है। शैक्षिक समाजशास्त्र के प्रभा वे अब प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह अपनी रूचि एवं क्षमता के अनुसार शिक्षा प्राप्त कर सके। जाति–पाति, रंग–रूप एवं लिंग आदि के भेदभाव अब किसी व्यक्ति के मार्ग में बाधा नहीं बन सकते।

3.3.6 शैक्षिक समाजशास्त्र के उद्‌देश्य

1. शिक्षक के कार्य का एवं सामाजिक प्रगति के लिए स्कूल के लिये कार्य का समाज के संदर्भ में ज्ञान प्राप्त करना।

2. स्कूल के ऊपर प्रभाव डालने वाले सामाजिक तत्वों का अध्ययन करना।

3. सामाजिक तत्वों का अध्ययन करते हुए उनके द्वार व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभावों का ज्ञान प्राप्त करना।

4. सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रवृतियों को समझते हुए शिक्षा के पाठ्‌यक्रम का सामाजिक दृष्टि से निर्माण करना।

3.3.7 शिक्षाः दार्शनिकीय तथा समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

1. **शिक्षा के उद्‌देश्यः**—शिक्षा के उद्‌देश्य को निर्धारित करना दर्शन का कार्य है। इस में हमें यह नहीं समझ लेना चाहिये कि शिक्षा के उद्‌देश्यों को निर्धारित करते समय शैक्षिक समाजशास्त्र चुप रहता है। ध्यान देने की बात है कि जब से शिक्षा में सामाजिकतावादी प्रवृति का विकास हुआ है तक से प्राचीन धारणा समाप्त हो गयी है एवं शैक्षिक समाजशास्त्र ने भी शिक्षा के उद्‌देश्य निर्धारित किये हैं जो निम्न हैं—

i शैक्षिक समाजशास्त्र के अनुसार बालकों में जनतांत्रिक भावनाओं, सामाजिक गुणों एवं सामाजिक दृष्टिकोण का विकास करना शिक्षा का प्रथम उद्‌देश्य है, जिससे वे समाज के साथ अपना व्यवस्थापन स्थापित कर सकें, अपने कर्त्तव्यों तथा अधिकारों को समझते हुए सामाजिक उत्तरदायित्व को निभा सकें। इस प्रकार बालकों को नागरिकता की शिक्षा देना शिक्षा का प्रमुख उद्‌देश्य है।

ii शैक्षिक समाजशास्त्र सामाजिक कुशलता एवं आत्म–निर्भरता पर बल देता है। इस दृष्टि से शिक्षा का दूसरा उद्‌देश्य बालकों को व्यावसायिक शिक्षा देना है।

iii शैक्षिक समाजशास्त्र इस बात पर विशेष बल देता है कि व्यक्ति अपने अवकाश का सदुपयोग करें। इसलिये अवकाश के सदुपयोग का उद्‌देश्य शिक्षा का तीसरा उद्‌देश्य है।

2. **शिक्षा का अर्थः–**यूं तो सामाजिकतावादी प्रवृति के अनुसार शिक्षा के अनेक कार्य हैं लेकिन Munroe ने अपनी पुस्तक 'ब्रीफ कोर्स इन दी हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन में शिक्षा के निम्न चार प्रमुख कार्यो पर प्रकाश डाला है–

i **ज्ञान का प्रसारः–**शिक्षा का प्रथम कार्य व्यक्ति को सामाजिक क्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग लेने हेतु तैयार करना है, जिससे व्यक्ति तथा समाज दोनों की उन्नति हो सके, लेकिन व्यक्ति एवं समाज की उन्नति बुद्धि पर निर्भर करती है, जो सिर्फ ज्ञान के द्वारा ही विकसित हो सकती है। इसलिये शिक्षा का कार्य ज्ञान का प्रसार करना है, जिससे व्यक्ति बुद्धिमान बन सके एवं सुयोग्य नागरिक के रूप में समाज की उन्नति में सहयोग प्रदान कर सकें।

ii **शिक्षा सामाजिक नियंत्रण के रूप मेंः–** बुद्धिमान नागरिकों को तैयार करने के अलावा शिक्षा सामाजिक नियंत्रण करने का भी एक मुख्य साधन है। उचित शिक्षा की व्यवस्था होने पर बालकों में नैतिक चेतना एवं आत्म–अनुशासन की भावनायें विकसित की जा सकती है। इससे वे समाज की सेवा करते हुए प्रत्येक चुनौती का डटकर मुकाबला कर सकेंगे। इसलिये सामाजिक नियंत्रण का कार्य शिक्षा के द्वारा सुचारू रूप से किया जाना शिक्षा का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है।

iii **सामाजिक परम्परा की सुरक्षा एवं हस्तान्तरणः–**शिक्षा का तीसरा कार्य सामाजिक परम्परा अर्थात संस्कृति तथा सभ्यता की रक्षा करना एवं उसको भावी संतति को हस्तान्तरित करना है। ऐसा न करने से न तो सामाजिक परम्परा को प्राप्त किया जा सकता है तथा न ही उसे अपने निजी योगदान के साथ भावी संततिक को हस्तान्तरिक किया जा सकेगा। इससे व्यक्ति अपने वातावरण से अनुकूलन करने में असमर्थ हो जायेगा एवं समाज भी अवनति की तरफ अग्रसर हो सकेगा।

iv **सामाजिक विकासः–**शिक्षा का चौथा कार्य समाज का विकास करना है। इसका एक मात्र कारण यह है कि व्यक्ति का विकास सिर्फ सुव्यवस्थित एवं उन्नतिशील समाज में ही हो सकता है। हमारे देश भारत में शिक्षा का यह सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। इसका कारण यह है कि जब से हमने स्वतंत्रता प्राप्त की है, उस समय से पुरानी रूढ़ियों को अनावश्यक समझा जाने लगा। परिणामस्वरूप इन रूढ़ियों पर आधारित हमारा सम्पूर्ण ढाँचा अब अपूर्ण ही नहीं वरन असंगत भी है। इस दृष्टि से हमको अब बदले हुए

सामाजिक जीवन के साथ ऐसे सामाजिक ढाँचें की आवश्यकता है, जो वर्तमान सामाजिक माँगों को पूरा कर सकें।

4 **पाठ्यक्रम का निर्माणः**—मूर, ब्राउन एवं कोल आदि समाजशास्त्रियों ने पाठ्यक्रम के निर्माण के लिय निम्नलिखित सिद्धांतों की चर्चा की है।

i पाठ्यक्रम लचीला एवं परिवर्तनशील होना चाहिये।

ii पाठ्यक्रम बाल विकास के स्तर के अनुसार होना चाहिये।

iii पाठ्यक्रम बालकों के उत्तरदायित्व को निभाने में सहातया करता है।

iv पाठ्यक्रम में सामाजिक सेवाओं को स्थान मिलना चाहिये।

v पाठ्यक्रम में शैक्षिक योजनाओं को महत्व मिलना चाहिये।

vi पाठ्यक्रम में सांस्कृतिक मूल्यों को स्थान मिलना चाहिये।

शिक्षा के समाजशास्त्र की प्रकृति

शिक्षा का समाजशास्त्र सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था हेतु विभिन्न तरह के सिद्धांतों तथा प्रक्रियाओं का समूह पेश करता है जिनके माध्यम से समाज की समस्याओं को पेश किया जाता है।

3.3.8 शिक्षा का समाजशास्त्र तथा शैक्षिक समाजशास्त्र में अन्तर

	शिक्षा का समाजशास्त्र		शैक्षिक समाजशास्त्र
1	यह शिक्षा के सामाजिक सिद्धांत को पेश करता है	1.	यह शिक्षा मनोविज्ञान की तरह एक विशेष विधा के रूप में विकसित हुआ है।
2.	यह शैक्षिक अनुसंधानों का प्रयोग सामाजिक व्यवस्था में करता है	2.	यह सामाजिक अनुसंधानों का प्रयोग शैक्षिक प्रक्रिया में करता है।
3.	शिक्षा का समाजशास्त्र स्वयं के अनुसंधानों द्वारा शिक्षा की समस्याओं का समाधान खोजता है।	3.	शैक्षिक समाजशास्त्र सामाजिक सिद्धांतों का प्रयोग शिक्षा समस्याओं के समाधान में पेश करता है।
4.	यह शिक्षाशास्त्रियों के कार्यो का विश्लेषण सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में पेश करता है	4.	यह शिक्षाशास्त्रियों के लिए उनके भावी कार्यो के लिए योजना का स्वरूप पेश करता है।
5.	यह विद्यालयी व्यवस्था को भी एक सामाजिक संरचना के रूप में पेश करता है।	5.	शैक्षिक समाजशास्त्र शिक्षा के अध्ययन में विद्यालय को समाजशास्त्रीय उपागम के रूप में पेश करता है अर्थात विद्यालयी

			शिक्षा समाजशास्त्रीय आधारों को विकसित करने वाली होनी चाहिये।

3.4 संस्कृति की परिभाषाएं

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृति की आपस में मिलती–जुलती अनेक परिभाषाएं उपस्थित की हैं। कुछ मुख्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

i **रेडफील्ड द्वारा परिभाषा**–रेडफील्ड ने संस्कृति की संक्षिप्त परिभाषा इस प्रकार की है, "संस्कृति कला और उपकरणों में जाहिर परम्परागत ज्ञान का वह संगठित रूप है जो परम्परा के द्वारा संरक्षित हो कर मानव समूह की विशेषता बन जाता है।"

ii **डॉ. दिनकर द्वारा परिभाषा**–डॉ. रामधारी सिंह दिनकर ने संस्कृति की धारणा को इस प्रकार स्पष्ट करने का प्रयास किया है "संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते है।"

iii **टायलर द्वारा परिभाषा–टायलर ने संस्कृति की परिभाषा इन शब्दों में प्रस्तुत की है,** "संस्कृति एक जटिल सम्पूर्ण है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कलाएं, नीति, विधि, रीति–रिवाज और समाज के सदस्य होकर मनुष्य द्वारा अर्जित विशेषताएं और आदर्श शामिल है।"

3.4.1 संस्कृति की प्रकृति की विशेषताएं

संस्कृति की परिभाषा एवं अन्तर्वस्तु को जान लेने के बाद इसकी प्रकृति की विशेषताएं को जानना संभव है। संस्कृति की मुख्य विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

संस्कृति के संदर्भ में शिक्षा के सामाजिक आधार–

समाज एवं संस्कृति का घनिष्ठ संबंध है, इनमें से अगर किसी एक का अध्ययन करना चाहें तो प्रसंगवश अनिवार्य रूप से दूसरों का भी अध्ययन करना होता है। अर्थात 'समाज' का अध्ययन करते समय 'संस्कृति' का अध्ययन करना होता है तथा 'संस्कृति' का अध्ययन करते समय 'समाज' का अध्ययन भी करना होता है।

1. संस्कृति तथा समाज का संबंध

व्यक्ति का समाज तथा संस्कृति के साथ समान रूप से संबंध है। व्यक्ति के व्यवहार के ये दोनों ही महत्वपूर्ण आधार हैं। इस रूप में व्यक्ति, समाज एवं संस्कृति तीनों ही अन्योन्याश्रित है। व्यक्ति का समय विकास समाज तथा 'संस्कृति' दोनों के प्रभाव से होता है। इस समीकरण द्वारा भी स्पष्ट है कि समाज का

सामूहिक जीवन भी व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता है। तथा दूसरी तरफ संस्कृति के आदर्श नियम भी मानव–व्यवहार की दिशा प्रदान करते हैं।

समाज तथा संस्कृति का पारस्परिक संबंध है। समाज वास्तव में संस्कृति का आधार है। समाज में ही संस्कृति उत्पन्न होती है। तथा विकसित होती है। समाज के अभाव में संस्कृति का अस्तित्व ही संभव नहीं है। संस्कृति का एक अनिवार्य गुण सामाजिकता है। इसके अतिरिक्त यह भी सत्य है कि समाज के माध्यम से ही संस्कृति का अध्ययन संभव हो सकता है। सामाजिक व्यवहार के माध्यम से ही सांस्कृतिक व्यवहार का अध्ययन होता है। जहाँ एक तरफ संस्कृति समाज पर निर्भर है, वहीं दूसरी और समाज भी संस्कृति पर ही निर्भर है।

2. संस्कृति तथा समाज में अन्तर

यह सत्य है कि संस्कृति तथा समाज में घनिष्ठ संबंध हैं तथा दोनों एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा निर्भर रहते हैं, लेकिन फिर भी इन दोनों में कुछ अन्तर भी है। संस्कृति जीवन यापन का एक तरीका है तथा ' एक समाज' मनुष्यों का एक संगठित समूह है। समाज व्यक्तियों से मिलकर बनता है, जबकि संस्कृति व्यक्तियों की व्यवहार में निहित रहती है। समाज व्यक्ति के संबंधों से उत्पन्न संगठन तथा संरचना में निहित रहता है, जबकि संस्कृति मानव की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयास में उत्पन्न उद्देश्यों में निहित रहती है। समाज मुख्य रूप से सामाजिक संबंधों पर आधारित है, इससे भिन्न संस्कृति आदर्श–नियमों या आदर्शात्मक व्यवस्था पर आधारित होती है।

3.4.2 संस्कृति सभ्यता में अन्तर

प्रायः संस्कृति तथा सभ्यता को समान समझने की पूर्ति सामान्य व्यक्तियों द्वारा की जाती है। जबकि दोनों में पर्याप्त अन्तर है। संस्कृति का संबंध मानव की अभिव्यक्ति, विचार तथा परम्पराओं से होता है, जिनको यह साध्य के रूप में देखता है जबकि सभ्यता वस्तु जगत से संबंधित होती है। सभ्यता का संबंध जीवन में प्रयोग होने वाली वस्तुओं से होता है जिनको हम साधन के रूप में देखते हैं। संस्कृति तथा सभ्यता के अन्तर की निम्न तरह से स्पष्ट किया जा सकता है।

संस्कृति एवं सभ्यता के निम्न अन्तर हैं–

	संस्कृति		सभ्यता
1	संस्कृति हमारे वैचारिक तथा बाह्म स्वरूप को व्यक्त करती है।	1.	सभ्यता का संबंध हमारे जीवन में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं से होता है।
2.	संस्कृति हमारी वास्तविक अनुभूति तथा	2.	सभ्यता हमारी बाह्म व्यवस्था एवं

	विचारों को व्यक्त करती है।		उससे संबंधित साधनों के संदर्भ में वर्णन करती है।
3.	संस्कृति के उपकरणों में अपार्थिवता को महत्व दिया जाता है। जैसे धर्म, मूल्य एवं नैतिकता आदि ।	3.	सभ्यता में पार्थिव उपकरणों को महत्व दिया जाता है। जैसे कार, मोटर, एवं साईकिल इत्यादि ।
4.	संस्कृति का संबंध मानवीय तथा सामाजिक मूल्यों से होता है।	4.	सभ्यता का संबंध उपयोगिता से होता है अर्थात उपयोगी साधनों को ही महत्व प्रदान किया जाता है।
5.	संस्कृति के तत्व गतिशील तथा प्रवाहात्मक प्रवृति के होते हैं एवं नष्ट नहीं होते हैं जैसे सत्य, अहिंसा का प्रभाव किसी संस्कृति में ज्यादा होता है तो किसी संस्कृति में कम होता है।	5.	इसके साधन एक निश्चित समय के बाद नष्ट हो जाते हैं। जैसे–मकान, सड़क, एक निश्चित समय के बाद नष्ट हो जाते हैं।

3.4.3 संस्कृति के प्रकार

संस्कृति को मुख्य रूप से भागों में विभक्त किया जाता है। इसका प्रमुख आधार मूर्त तथा अमूर्त स्वरूप होता है। इसको विद्वानों ने निम्न रूप से पेश किया है।

1. **भौतिक संस्कृतिः–**भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत वे सभी वस्तुएं आती हैं जिनका हमारे व्यावहारिक जीवन में मूर्त स्वरूप उपस्थित रहता है। ये अमूर्त वस्तुएँ हमारे व्यावहारिक जीवन के रहन–सहन के स्तर को निर्धारित करती है। इन वस्तुओं का निर्माण मानव द्वारा अपनी सुख–सुविधा तथा आवश्यकता की पूर्ति हेतु किया जाता है। जैसे घड़ी, रेडियो, कार, मोटर कार, बाइक एवं भवन आदि।

2. **अभौतिक संस्कृतिः–**अभौतिक संस्कृति का संबंध उन विचारों तथा भावनाओं से होता है जिन्हें मूर्त रूप से पेश नहीं किया जा सकता है अर्थात जिनका स्वरूप अमूर्त होता है। जैसे–धर्म, भाषा, साहित्य, कला नियम तथा परम्पराएँ इत्यादि। अभौतिक संस्कृति का संबंध मानव की मनोदशा तथा विचारों से होता है, जिनका कि व्यावहारिक स्वरूप समाज में देखने को मिलता है। जैसे भारतीय संस्कृति में नैतिकता तथा मानवता के गुणों का समावेश होना अभौतिक संस्कृति का प्रमुख उदाहरण है।

3.4.4 शिक्षा तथा संस्कृति में संबंध

शिक्षा तथा संस्कृति एक दूसरे से अभिन्न रूप से संबंधित है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य सांस्कृतिक विकास को महत्वपूर्ण दिशा प्रदान करता है जिससे कि वह अनुकरणीय रूप से समाज के सामने पेश हो सकें। इसके संबंध में बामेल्ड लिखते हैं कि "संस्कृति की सामग्री से ही शिक्षा का प्रत्यक्ष रूप से निर्माण होता है तथा यही

सामग्री शिक्षा को न सिर्फ उसकी स्वयं के उपकरण वस्तु उसके अस्तित्व का कारण प्रदान करती है।" इससे यह तथ्य प्रकट होता है कि संस्कृति के अभाव में शिक्षा का कोई औचित्य सिद्ध नहीं होता है। शिक्षा में विभिन्न तरह की विशेषताओं का पाया जाना संस्कृति का ही परिणाम होता है।

1. **संस्कृति की निरन्तरता तथा शिक्षाः**—यहाँ संस्कृति की निरन्तरता का तात्पर्य किसी समाज के व्यक्तियों का अपनी संस्कृति से लगातार सम्पर्क में रहने से है। अगर कोई समाज अपनी संस्कृति से अलग हो जाता है तो धीरे–धीरे उसका अस्तित्व खत्म हो जाता है। इसलिये यह जरूरी है कि किसी जाति या समाज को जीवित रहने हेतु उसकी संस्कृति का संबंध उस जाति अथवा समाज से निरन्तर बना रहना चाहिये। इस निरन्तरता हेतु शिक्षा का मुख्य योगदान रहता है।

2. **संस्कृति हस्तान्तरण तथा शिक्षाः**—संस्कृति हस्तान्तरण का अर्थ किसी समाज के व्यक्तियों द्वारा रीति–रीवाज, परम्पराओं विचारों को दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने से होता है। जैसे सत्य तथा अहिंसा भारतीय संस्कृति के मूल तत्व थे। वर्तमान समय में भी भारतीय संस्कृति में सत्य तथा अहिंसा के मूल्य मूल तत्व थे। वर्तमान समय में बनी भारतीय संस्कृति में सत्य तथा अहिंसा के मूल तत्व के रूप में हैं। वर्तमान समय में भी भारतीय संस्कृति में सत्य तथा अहिंसा के मूल्य मूल तत्व के रूप में है। इससे यह सिद्ध होता है कि इन मूल्यों का हस्तान्तरण पीढ़ी दर पीढ़ी होते हुए वर्तमान समय तक आया है।

3. **संस्कृति परिवर्तन तथा शिक्षाः**—संस्कृति संबंधी मूल्य तथा विचारों में समय और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन नवीन मूल्यों के ग्रहण करने तथा अन्धविश्वासों के त्यागने के कारण होता है।

3.4.5 सांस्कृतिक परिवर्तन में शिक्षा की भूमिका

शिक्षा को सांस्कृतिक परिवर्तन का सशक्त साधन माना जाता है। समाज द्वारा शिक्षा को इसलिए सुदृढ़ तथा परिपक्व बनाया गया है, जिससे कि संस्कृति में अपेक्षित और उचित परिवर्तन किये जा सकें। सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए शिक्षा की भूमिका का निर्वाह निम्न रूप में होता है।

1. **जीवन शैली में परिवर्तनः**—शिक्षा के द्वारा मानव के व्यवहार तथा जीवन शैली में परिवर्तन किया जाता है। शिक्षित व्यक्ति तथा अशिक्षित व्यक्ति के व्यवहार में अन्तर पाया जाता है। शिक्षा मानव को जीवन जीने की कला सिखाती है। इसके कारण संस्कृति में अपेक्षित परिवर्तन होता है। इसलिये मानव की जीवन शैली को परिवर्तित करके शिक्षा के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से सांस्कृतिक परिवर्तन का कार्य किया जाता है।

2. **संस्कृति का परिमार्जनः**—शिक्षा के द्वारा संस्कृति का परिमार्जन किया जाता है। संस्कृति में अपेक्षित परिवर्तन करके उसे समायोपयोगी बनाया जाता है। संस्कृति में उन परम्पराओं तथा विचारों को शामिल किया जाता है जो सामाजिक उत्थान में मदद प्रदान करते हैं। इस तरह संस्कृति परिमार्जन में शिक्षा की विशेष भूमिका होती है।

3. **उदारता के दृष्टिकोण का विकासः**—शिक्षा के द्वारा मानव समाज में कट्टरता की प्रकृति को खत्म करके उदारवादी दृष्टिकोण का विकास किया जाता है। जिससे कि सांस्कृतिक परिवर्तन के विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। क्योंकि उदारवादी विचारधारा का समाज ही संस्कृति के परिवर्तन को स्वीकार कर लेता है। जैसे भारतीय संस्कृति में परिवर्तन की प्रकृति उदारता ही परिणाम है।

4. **धार्मिक उदारताः**—शिक्षा के धार्मिक संकीर्णता तथा कट्टरता को समाप्त करके धार्मिक उदारता की भावना का विकास सामाजिक व्यवस्था में किया जाता है। आज विश्व में धर्म निरपेक्षता तथा धार्मिक स्वतंत्रता की विचाराधाराओं को महत्व प्रदान किया गया है। किसी व्यक्ति पर धर्म परिवर्तन के लिए दबाव नहीं डाला जा सकता है। धार्मिक क्रियाओं में हठधार्मिता को खत्म करना शिक्षा का सांस्कृतिक परिवर्तन संबंधी कार्य है।

5. **वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकासः**—समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास शिक्षा के द्वारा ही किया जाता है। जब तक व्यक्ति विज्ञान के ज्ञान तथा उसकी तकनीकी प्रणालियों को महत्व प्रदान नहीं करेगा, तब तक वह अपने व्यवहार में उनका प्रयोग नहीं करेगा। इस तरह सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया भी सम्पन्न नहीं होगी। अतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के माध्यम से शिक्षा द्वारा सांस्कृतिक कार्य को सम्पन्न किया जाता है।

6. **सामाजिक व्यवस्था में सुधारः**—प्राचीन काल में हमारी सामाजिक व्यवस्था जाति तथा वर्ण के आधार पर थी जिसे हर व्यक्ति को अपनी योग्यता के प्रदर्शन का अवसर प्राप्त नहीं होता था। शिक्षा के द्वारा इसमें परिवर्तन किया गया। आज समाज के हर व्यक्ति की बगैर किसी भेदभाव के अपनी योग्यता के प्रदर्शन का अवसर प्राप्त होता है। इसमें जाति तथा वर्ग की मान्यता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः शिक्षा के द्वारा सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन करके सांस्कृतिक परिवर्तन के कार्य को किया गया है।

7. **सहयोग की भावना का विकासः—आज समाज में सहयोग की भावना का विकास शिक्षा** के द्वारा ही संभव हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति तथा देश एक—दूसरे के प्रति सहयोग की भावना रखते हैं। इस सहयोग के बगैर एक—दूसरे का कार्य पूर्णरूप से सम्पन्न नहीं होता है। सांस्कृतिक सहयोग भी इसी श्रेणी में आते है। किसी देश में अन्य देशों के सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन इसका मुख्य उदाहरण है।

8. **सामाजिक कल्याणः**—शिक्षा प्रदान करने के पीछे सामाजिक कल्याण का उद्‌देश्य निहित होता है। इस उद्‌देश्य की पूर्ति शिक्षा हमारी मानसिकता तथा विचारों में आवश्यक परिवर्तन करके करती है। हमारी मानसिकता तथा विचारधाराओं में होने वाला हर परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन तथा विकास का एक अंग होता है। इसलिये यह कार्य शिक्षा के माध्यम से होता है।

9. **जन—जागरणः**—शिक्षा के माध्यम से मानव समाज में चेतना जाग्रत करके जन—जागरण का कार्य किया जाता है। मानव को शिक्षा द्वारा इस योग्य बनाया जाता है जिससे कि वह अपने जीवन के बारे में उचित निर्णय ले सके। अतः यह जरूरी है कि समाज शिक्षित होना चाहिये। शिक्षित समाज में जरूरी रूप से संस्कृति में परिवर्तन सरल होता है क्योंकि व्यक्ति इस अवस्था में होने वाले परिवर्तनों के प्रभावों को भली प्रकार मानता है। इसलिये सांस्कृतिक परिवर्तन को स्वीकार कर लेता है।

उपरोक्त निवेदन से यह स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक परिवर्तन में शिक्षा की अहम भूमिका होती है। सांस्कृतिक परिवर्तन शिक्षा के द्वारा ही संभव होता है। शिक्षा द्वारा एक ऐसा मार्ग प्रशस्त किया जाता है जिस पर सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया आसानी से चलती है। क्योंकि शिक्षा मानव मस्तिष्क को विचार तथा चिन्तन की दृष्टि से परिपक्व बना देती है जिससे यह आवश्यक तथा उपयोगी परिवर्तन को स्वीकार कर लेता है।

3.5 आधुनिकता का अर्थः—

आधुनिक शब्द अग्रेजी के शब्द (Modern) का हिन्दी रूपान्तर है जिसका अभिप्राय है प्रचलन या फैशन । जो भी समकालीन है अर्थात वर्तमान समय में चलन में है वही आधुनिक है, चाहे वह अच्छा है अथवा बुरा, हम उसे पसन्द करते हैं अथवा नहीं।

मार्डन शब्द का प्रयोग छटी शताब्दीं में समकालीन तथा प्राचीन लेखों अथवा विषयों में अन्तर करने के लिए किया जाता था। सत्रहवीं शताब्दीं में आधुनिकता शब्द का प्रयोग सीमित तथा तकनीकी संदर्भ में किया जाने लगा।

समाज के अंतिम से अंतिम मूल्यों के अनुसार रहने वाली वस्तु को आधुनिक कहते हैं। उस वस्तु के इस प्रकार के रहने के गुण अथवा स्थिति को हम आधुनिकता कहते हैं।

डेनियल लर्नर के अनुसारः—आधुनिकता प्रगति, उन्नति की ओर सम्पन्नता तथा अनुकूलन की तात्पर्यता से संबंधित मन की आकांक्षाओं की एक अवस्था ही है।

आधुनिकता का अभिप्राय उस व्यवस्था से है जिसमें औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप कुछ ऐसे तत्व सम्मिलित हो गये हैं जो प्राचीन परम्पराओं में परिवर्तन ला रहे हैं। आधुनिकता एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का नाम है, जिसमें प्राचीन परम्पराओं के स्थान पर नवीन मान्यताओं को स्थान दिया गया है।

3.5.1 आधुनिकता में बाधाएं

यद्यपि भारतीय समाज में आधुनिकता का प्रसार में बाधक हैं।

1. ***ग्रामीण जनसंख्याः*—**भारत *में आज भी 75 प्रतिशत* से अधिक जनसंख्या गांवों में रहती है। कई गांव आज भी संचार सेवाओं से वंचित है। अतः आधुनिकता का प्रचार उतनी तेजी से नहीं हो रहा है।
2. **अशिक्षाः—**भारत में अशिक्षा का साम्राज्य है। अशिक्षित लोग परम्पराओं को अधिक मान्यता प्रदान करते हैं। परम्पराओं के चलते आधुनिक तत्वों का प्रसार नहीं हो पाता।
3. **धर्म की प्रधानताः—**भारत एक धर्म प्रदान देश है। यहाँ के जनजीवन में 'धर्म' हर क्षेत्र में व्याप्त है। जन्म से लेकर मृत्यु पश्चात् तब अनेक धार्मिक संस्कार व्यक्ति पर किये जाते हैं। अतः आधुनिकता का प्रसार तेजी से नहीं हो पाता।
4. **संयुक्त परिवारः—**भारतीय समाज की एक महत्वूपर्ण विशेषता संयुक्त परिवार है। संयुक्त परिवार में रूढ़ियों और परम्पराओं का महत्व अधिक होता है। ऐसी स्थिति में आधुनिकता के तत्वों का प्रसार नहीं हो पाता।
5. **जातिवादः—**भारत में जातिवाद के चलते नई बातों का प्रचलन सीमित हो जाता हैं व्यक्ति अपनी जाति का हित पहले सोचता है, सम्पूर्ण समाज का बाद में। जातिवाद के कारण व्यवहारों का क्षेत्र सीमित हो जाता है।

3.5.2 आधुनिकता के संदर्भ में शिक्षा के सामाजिक आधार

अगर कोई समाज तीव्र आधुनिकीकरण करना चाहता है तो उसे उपयुक्त शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये। इस कार्य के लिए शिक्षा की भी व्यवस्था की जाये, उसमें निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये।

1. शिक्षा का जन–जन तक पहुँचाना 2. निर्भरता का उन्मूलन एवं प्रौढ़ शिक्षा की व्यापक व्यवस्था करना 3. शिक्षा के द्वारा नागरिकों में आर्थिक, सामाजिक धार्मिक एवं राजनीतिक चेतना जाग्रत करना। 4. जातिवादिता, धार्मिक कट्टरता, प्रांतीयता, भाषावादिता जैसी संर्कीणताओं से व्यक्तियों को ऊपर उठाना। 5. नागरिकों में नव जागृति कर उनकी आकांक्षाओं,अभिलाषाओं, अभिवृत्तियों एवं मूल्यों के स्तर की शिक्षा के माध्यम से बदलना। 6. शिक्षा के द्वारा विज्ञान तथा तकनीकी का व्यावहारिक ज्ञान देना 7. सामाजिक शिक्षा की व्यवस्था करना । 8. अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था के द्वारा यह कार्य और भी तीव्र गति से किया जा सकता है।

आज भारतीय समाज में बड़ी तीव्रता के साथ आधुनिकीकरण की जरूरत अनुभव की जा रही है। भारतीय समाज अगर विश्व के अन्य उन्नत समाजों के साथ खड़ा होना चाहता है तो उसे प्राचीन कूपमण्डूकता से बाहर निकल विश्व द्वारा विज्ञान, राजनीति, धर्म, आर्थिक क्रिया–कलापों एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में जो परिवर्तन हुए हैं उनका लाभ लेते हुए साथ ही अपनी गौरवमयी सांस्कृतिक परम्पराओं को बचाते हुए समन्वित तथा संतुलित सामाजिक विकास तीव्र गति से करना होगा तथा इस कार्य के लिए सबसे ज्यादा उपयोगी साधन सुलभ शिक्षा है। शिक्षा द्वारा नवयुवकों को भारतीय संस्कृति की विशाल परम्पराओं, धाराओं एवं नैतिक मूल्यों का ज्ञान देना होगा, उनके विचारों में व्यापकता लानी होगी एवं विश्व में हो रहे परिवर्तनों से अवगत कराना होगा।

इन कार्यो के लिए वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन करने होगें। हमें भारतीय समाज का आधुनिकीकरण करने के लिए एक विशिष्ट तरह की शिक्षा व्यवस्था देश में प्रचलित करनी होगी जिससे निम्न विशेषतायें होंगी–

1. औपचारिक तथा अनोपचारिक शिक्षा के दोनों ही रूप समान उद्देश्य लेकर आगे बढ़ जिससे बालकों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का समन्वित विकास हो सके।
2. शिक्षा को जीवनोपयोगी एवं राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल बनाना होगा।
3. ऐसी शिक्षा व्यवस्था करनी होगी, जो छात्रों को सामाजिक
4. प्रौढ़ शिक्षा, अनिवार्य शिखा, निःशुल्क शिक्षा आदि के द्वारा तीव्र शिक्षा प्रसार–प्रचार करना होगा।
5. पत्राचार–शिक्षा, अंश–कालीन शिक्षा, खुले–विद्यालय आदि के द्वारा शिक्षा जन–जन तक पहुँचानी होगी।
6. शिक्षा का जहाँ एक तरफ भारतीयकरण हो, वहीं दूसरी तरफ इसे विकासोन्मुखी तथा उदार बनाया जाये।
7. विज्ञान, तकनीकी, कृषि, वाणिज्य जैसी व्यावहारिक तथा व्यावसायिक प्रकार की शिक्षा को अधिक महत्व दिया जाये।
8. शिक्षा के अवसरों की समानता एवं शिक्षा के सार्वभौमीकरण को विशेष लक्ष्य बनाया जाये।

समाज को बुराईयों से बचाने हेतु जरूरी है कि समाज में एक व्यवस्थित कल्याणकारी एवं सुनियोजित आधुनिकीकरण लाया जाये। यह कार्य शिक्षा द्वारा ही संभव है। शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिये कि वह न सिर्फ आधुनिकीकरण को गत्यात्मकता प्रदान करने, वरन एक सुविचार एवं व्यवस्था भी प्रदान करें। इस कार्य के लिए शिक्षा संबंधी निम्न सुझाव प्रयोग में लाये जाने चाहिये।

1. समाज में ऐसी शिक्षा की व्यवस्था हो, जो विभिन्न समाजों में हो रहे विविध परिवर्तनों एवं उनके हितकर तथा अहितकर पक्षों की जानकारी प्रदान कर सकें।
2. विविधतापूर्ण तथा जीवनोपयोगी शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये।

3. शिक्षा की इस प्रक्रिया को इस रूप से प्रेषित किया जाना चाहिये कि वह जन–जन को प्रभावित कर सके।
4. शिक्षा द्वारा सांस्कृतिक विल।बना को समाप्त करने की चेष्टा की जाये।
5. शिक्षा की व्यवस्था इस तरह से की जाये जिससे ज्ञान के भंडार में वृद्धि हो।
6. शिक्षा की व्यवस्था इस तरह होनी चाहिये जो व्यक्ति तथा समाज की भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में प्रगति करें।
7. शिक्षा का स्वरूप व्यावहारिक होना चाहिये अर्थात उसके द्वारा कुशल श्रमिक कारीगर एवं प्रशासक बन सकें।

इस तरह हर समाज के अस्तित्व को बचाये रखने के लिये यह जरूरी है कि समाज के आधुनिकीकरण हो

3.6 समाज और ज्ञान के विभिन्न ढाँचें में अन्तः स्थापित शक्ति के बीच संबंध :–समाज एक परिवर्तनशील तथा पेचीदा व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत व्यक्तियों की विभिन्न संस्थाएं, समितियाँ, समूह व समुदाय पाये जाते हैं। मानव समाज में रहते हुए विभिन्न क्रियायें करता हुआ अन्य व्यक्तियों से पारस्पारिक संबंध बनाकर जीवन व्यतीत करता है। समाज एक संगठन है, एक व्यवस्था है जिसका निर्माण बिखरे हुए व्यक्तियों से न होकर व्यक्तियों के आपसी संबंधों से होता है। इसी कारण मैकाइवर ने समाज को सामाजिक संबंधों का जाल कहकर सम्बोधित किया है। वास्तव में समाज का अर्थ सामाजिक संबंधों के ताने–बाने से है, जो व्यक्तियों के मध्य पाया जाता है।

3.6.1 समाज के विभिन्न अवयवों के साथ शिक्षा के अंतर्सम्बन्ध इस प्रकार हैं–

1. **शिक्षा एवं अर्थव्यवस्था के अंतर्सम्बन्धः–**तकनीकी एवं औद्योगिक क्षेत्र में हुई प्रगति के कारण अर्थव्यवस्था में कृषि व उद्योग संबंधित होते हैं। इसका शिक्षा पद्धति पर भी व्यापक असर पड़ता है। उच्च शिक्षा एवं व्यवसायिक शिक्षा का महत्व बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा के विस्तार से लोगों के आर्थिक स्तर में वृद्धि होती है। प्रशिक्षित वर्ग की आय अधिक होती है। एक सर्वेक्षण के अनुसार अभिभावकों के आर्थिक, सामाजिक स्तर का उनके बच्चों की शिक्षा के स्तर व गुणवत्ता पर व्यापक असर पड़ता है। कहा जाता है कि 52 प्रतिशत कॉलेज के विद्यार्थी परिवारों से आते है। यह बात अक्षरशः सत्य है कि आर्थिक आधार शिक्षा की गुणवत्ता तय करता है। सबको शिक्षा का समान अधिकार होने के बावजूद उच्च एवं गुणात्मक शिक्षा के लिए वही जाते हैं जिनका सामाजिक एवं आर्थिक आधार अच्छा होता है।
2. **शिक्षा एवं राजनीतिः–**भारत में शिक्षा का भविष्य निर्धारित करने वाली ताकतों की प्रकृति राजनीतिक है। भारत में प्रमुख वर्ग है–उच्च अधिकारी एवं राष्ट्रीय राजनेता। सये दोनों वर्ग भारत को एक आधुनिक औद्योगिक राष्ट्र बनाने के लिय उत्तरदायी है। राजनीतिक शक्ति से सम्पन्न लोग शिक्षा से राजनीतिक लाभ उठाने के प्रयास करते हैं। उनके

द्वारा किये गये प्रयासों के फलस्वरूप अल्पसंख्यक समुदाय व निचलें वर्ग के लोगों को शिक्षा प्राप्ति के अवसर मिलते हैं।

3. **शिक्षा एवं जाति में अंतर्सम्बन्धः—**जाति व्यवस्था भारतीय समाज का एक अभिन्न अंग है। जाति की सदस्यता जन्म के आधार पर होती है। नीची जातियों का सदियों से शोषण होता आया है। परन्तु अब उन्हें कुछ संवैधानिक सुरक्षा दी गई है। इन संवैधानिक अधिकारों के आधार पर उन्हें शिक्षा व रोजगार इत्यादि के समान अवसर प्राप्त होते हैं। इन सबके बावजूद भारत में जाति भेद भारतीय समाज में शिक्षा के लिए एक बड़ा कारक है।
4. **शिक्षा व सामाजिक पिछड़ेपन में अंतर्सम्बन्धः—**सामाजिक पिछड़ेपन का आकलन जाति, वर्ग तथा लिंग इत्यादि के आधार पर किया जाता है। सामाजिक पिछड़ेपन से प्रगति में बाधा पहुँचती है। उससे शिक्षा के अवसर भी कम होते हैं। दूसरी तरफ शिक्षा के व्यापक प्रसार से पिछड़ेपन पर रोक लगाकर सामाजिक व आर्थिक उन्नति की जा सकती है।
5. **शिक्षा एवं संस्कृति के बीच अंतर्सम्बन्धः—**समाज में आए बदलावों का संस्कृति पर भी प्रभाव पड़ता है। शिक्षा संस्कृति की गुणवत्ता को बनाये रखने में सहयोग करती है। इस प्रकार इन दोनों में गहरा संबंध है। शिक्षा दो विभिन्न संस्कृतियों को दूसरे से जोड़ने व समझने का कार्य भी करती है।

प्रगति की जाँच करें—

प्रश्न—1 "शिक्षा का समाज" का वर्णन करें ?

प्रश्न—2 पाठ्यक्रम के माध्यम से ज्ञान के विशेषाधिकार को दर्शाइयें ?

प्रश्न—3 पाठ्यक्रम के माध्यम से शिक्षा के प्रभाव का वर्णन करो ?

प्रश्न—4 समाज के संदर्भ में शिक्षा के सामाजिक आधार का वर्णन करो ?

प्रश्न—5 संस्कृति के संदर्भ शिक्षा के सामाजिक आधार का वर्णन करो ?

प्रश्न—6 आधुनिकता के संदर्भ में शिक्षा के सामाजिक आधार का वर्णन करो ?

निम्नलिखित प्रश्नों पर टिप्पणी लिखें ।

प्रश्न—1 ज्ञान का समाजशास्त्र क्या है ?

प्रश्न—2 शिक्षा के उद्देश्य को बताइये ?

प्रश्न—3 शिक्षा का समाजशास्त्र तथा शैक्षिक समाजशास्त्र में अन्तर स्पष्ट करो ?

प्रश्न—4 संस्कृति के प्रकार बताइए ?

प्रश्न—5 शिक्षा तथा संस्कृति में संबंध बताइये ?

प्रश्न—6 समाज और ज्ञान के अन्तः स्थापित संबंध को परिभाषित करें ?